विवाद को सुलझाने की दिशा में बड़ा कदम

एक ही बार में पूरी समस्या को हल करने के बजाय इसे टुकड़ों में बांटकर धीरे–धीरे सहमति बनाते और उसे समझौते का रूप देते हुए आगे बढ़ने की राह अपनाई गई। तीसरी बात यह कि दोनों राज्यों के राजनीतिक नेतृत्व का संपूर्ण समर्थन इन प्रयासों को हर कदम पर उपलब्ध रहा।

अमन सिंह।।

असम और मेघालय के मुख्यमंत्रियों के बीच हुआ सीमा समझौता 50 साल पुराने विवाद को सुलझाने की दिशा में एक बड़ा कदम है। इस समझौते के जरिए दोनों राज्यों ने 12 विवादित स्थलों में से छह को लेकर सहमति हासिल कर ली। अब इस तय फॉर्म्युले के मुताबिक सर्वे किए जाने के बाद सीमाओं का पुनर्निर्धारण होगा और फिर उस पर संसद की मंजूरी ली जाएगी। इन औपचारिकताओं में कुछ और महीने लगेंगे, लेकिन विवादों की वजह से दोनों राज्यों के बीच जिस तरह का तनावपूर्ण माहौल लंबे समय से बना हुआ था, इस समझौते ने उसे खत्म कर दिया है। हालांकि विवाद के बिंदु अभी बरकरार हैं।

जानकारों के मुताबिक जो बचे हुए छह विवादित स्थल हैं, उन्हें सुलझाना थोड़ा मुश्किल है। जाहिर है, आगे की राह और चुनौतीपूर्ण साबित होने वाली है। लेकिन फिर भी इस समझौते ने अंतहीन से लगते विवादों को सुलझाने की राह दिखाई है। ध्यान रहे, नॉर्थ ईस्ट के चार राज्य– नगालैंड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम– पहले असम का ही हिस्सा थे। अलग होने के समय से ही सीमावर्ती कुछ इलाकों को लेकर इनमें मतभेद रहे, जो कभी सही ढंग से सुलझाए नहीं जा सके। हालांकि सुलझाने के प्रयास जरूर किए गए समय–समय पर।

असम–मेघालय विवाद को ही लें तो 1985 में ही तत्कालीन मुख्यमंत्री हितेश्वर सैकिया और कैप्टन डबल्यू ए संगमा की पहल पर पूर्व मुख्य न्यायाधीश वाय वी चंद्रचूड़ की अध्यक्षता में समिति गठित की गई थी। ए`स` और भी प्रयास हुए, लेकिन ये तमाम प्रयास नतीजा देने में नाकाम रहे। पिछले साल जुलाई से शुरू किए गए ताजा प्रयास अगर कामयाब हो रहे हैं तो उसके पीछे कई फैक्टर हैं। इसके लिए बनाई गई क्षेत्रीय कमिटी ने संबंधित इलाकों का गहन दौरा कर स्थानीय निवासियों से बातचीत के जरिए समस्या की जटिलता को समझा और उन्हें विश्वास में लिया।

दूसरे, एक ही बार में पूरी समस्या को हल करने के बजाय इसे टुकड़ों में बांटकर धीरे–धीरे सहमति बनाते और उसे समझौते का रूप देते हुए आगे बढ़ने की राह अपनाई गई। तीसरी बात यह कि दोनों राज्यों के राजनीतिक नेतृत्व का संपूर्ण समर्थन इन प्रयासों को हर कदम पर उपलब्ध रहा। केंद्र सरकार की ओर से दी गई प्रेरणा भी इस पूरी प्रक्रिया के दौरान उत्प्रेरक का काम करती रही।

बहरहाल, इस महत्वपूर्ण सफलता के लिए केंद्र और राज्य सरकारें निस्संदेह बधाई की हकदार हैं। लेकिन यह भी याद रखना जरूरी है कि ऐसे समझौतों की असल परीक्षा बाद के वर्षों में इन पर अमल के दौरान होती है। सीमा के दोनों तरफ दोनों राज्यों में यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि स्थानीय आबादी में इस समझौते को लेकर किसी तरह की गलफहमी जड़ न जमाए और इसके प्रति स्वीकार्यता का भाव बना रहे।

ईश्वरीय संविधान

धर्म-दर्शन

अशोक वोहरा। जैसे – मनुष्य को बिना सिखाये न चलना आवे, न बोलना, न तैरना और न खाना आदि। जबकि हिरण का बच्चा पैदा होते ही दौड़ने लगता है, तैरने लगता है। यही बात अन्य गाय,भैंस,शेर,मछली,सर्प,कीट–पतंग आदि के साथ है। अतः ईश्वर ने मनुष्य के सीखने के लिए भी तो कोई ज्ञान दिया होगा जिसे धर्म कहते है। जैसे भारत के संविधान को पढ़कर हम भारत के धर्म, कानून, व्यवस्था, अधिकार आदि को जानते है वैसे ही ईश्वरीय संविधान वेद को पढ़कर ही हम मानवता व इस ईश्वर की रचना सृष्टि को जानकर सही उन्नति को प्राप्त कर सकते है। क्या हिंदू धर्म और वेद पुराण इस बात की इजाजत देते हैं कि गैर हिंदू व्यक्ति धर्म परिवर्तन करके हिंदू बन सकता है या उन्हें किसी तरह हिंदू बनाया जा सकता है?

संपादकीय

कुछ नहीं बदला

तब महापुरुषों की अधिक मूर्तियां बनने लगती हैं। कह सकते हैं कि उनके विचार पीछे छूटने लगते हैं। बस मूर्तियां रह जाती हैं। आंबेडकर के साथ भी ऐसा होता रहा है। यह पिछले 70 वर्षों से हो रहा है। दलितों की अस्मिता और सम्मान की भावना पीछे छूट जाती है। आगे आ जाता है द्वेष। इन सबके बीच दलितों का जीवन पहले जैसा ही रहता है। हां, विज्ञापनों के रूप में घोषणाएं जरूर होती हैं। आंबेडकर पर कौन सी पार्टी अधिक कब्जा कर पाती है, बस यही मकसद रह जाता है। आंबेडकर को 'शोपीस' बनाने की कोशिश। लेकिन दलितों की शिक्षा, रोजगार के अवसर और उनके जीवनस्तर में बड़े बदलाव को लेकर गंभीरता से कम सोचा गया और अगर सोचा भी गया तो ईमानदारी से उस पर अमल नहीं हुआ। आजादी से अब तक हुए तमाम चुनावों को देखते हुए वोटर इतना तो समझ ही गए हैं कि हर चुनाव के बाद सामाजिक न्याय की धारा तो साल या छह माह ही बढ़ पाती होगी, अगले चार वर्षों में तो जनता के प्रतिनिधियों पर कॉरपोरेट हावी हो जाते हैं या सरकारें कॉरपोरेट अंदाज में काम शुरू कर देती हैं। आखिर सामाजिक न्याय की राजनीति यहीं आकर खत्म क्यों हो जाती है? इसके आगे बहुत कुछ है। नेताओं को इस बारे में सोचना चाहिए। दलित समाज के बुद्धिजीवियों को भी।

एक बार महात्मा गांधी ने कहा भी था, 'आंबेडकर अगर पत्थर भी मारें तो मैं सह लूंगा।' वैसे, एक सीमा तक गांधी और गांधीवादियों ने आंबेडकर को सहा भी। इस तरह से आंबेडकर को झेलने वाली सवर्ण नेताओं की जमात बड़ी हुई।

गांधी या आंबेडकर

मोहनदास नैमिशराय।।

ब्रिटिश भारत के पचास बरस। आजाद भारत के पचास बरस। कुल मिलाकर 100 वर्षों में डॉ. भीमराव आंबेडकर की स्थिति अलग–अलग रही। समाजशास्त्रियों से लेकर राजनीतिक गलियारों में उनके बारे में जो स्वर उभरे, उनमें उन्हें नकारा अधिक गया और स्वीकारा कम। सामाजिक न्याय पर आंबेडकर का जो चिंतन था, उसे लेकर सवर्णों के बीच द्वंद्व रहा। लेकिन नई शताब्दी आते–आते भारतीय राजनीति का रंग बदलने लगा। वक्त उनकी बंद खिड़कियों और दरवाजों पर दस्तक दे रहा था और परंपरागत समाज के भीतर परिवर्तन लाने की गुहार भी लगा रहा था।

एक बार महात्मा गांधी ने कहा भी था, 'आंबेडकर अगर पत्थर भी मारें तो मैं सह लूंगा।' वैसे, एक सीमा तक गांधी और गांधीवादियों ने आंबेडकर को सहा भी। इस तरह से आंबेडकर को झेलने वाली सवर्ण नेताओं की जमात बड़ी हुई। इससे देश, समाज का भला ही हुआ। इस तरह आंबेडकर के सामाजिक दर्शन को फिर से पढ़ने और समझने का दौर शुरू हुआ। कुछ ने इतिहास से सबक लिया। कुछ ने अपनी राजनीति से आंबेडकर को जोड़कर नई संभावनाओं की तलाश की। जिन्हें सत्ता तक पहुंचने की चाह थी, उनके लिए तो आंबेडकर को फिर से स्थापित करना

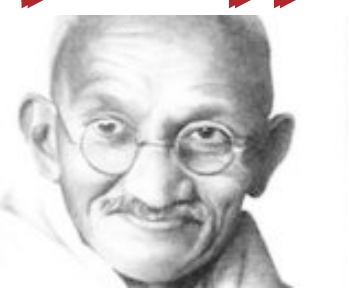

बेहद जरूरी था। राजनीति के इसी टर्निंग पॉइंट के कारण बाबा साहब स्थापित होते गए।

शुरुआत में गांव–कस्बों से महानगर तक, पार्कों और चौराहों पर आंबेडकर की मूर्तियां लगाई गईं। स्कूल–कॉलेज के सिलेबस में बदलाव किए गए। आंबेडकर की जीवनी पढ़ाने का दौर शुरू हुआ। राज्यसभा में भी दलित प्रतिनिधियों का प्रवेश हुआ। विधानसभाओं से लेकर संसद तक में आंबेडकर को संविधान निर्माता से लेकर राष्ट्रनिर्माता कहने की प्रतिस्पर्धा अलग–अलग राजनीतिक दलों के मुखियाओं के बीच होने लगी। इस होड़ में गांधी पीछे छूटते गए, आंबेडकर आगे निकलते गए। कुछ राजनीतिक दलों का शीर्ष नेतृत्व ऐसा चाहता भी था। ये वे लोग थे, जो आजादी के 40–50 वर्षों तक राजनीति के बाजार में गांधी के नाम को कैश करते आए थे। आखिर ये लोग कब तक गांधी का नाम लेते? कांग्रेस ने आंबेडकर को अपनी राजनीति से जोड़ने में जितनी देरी की, उतनी ही तेजी बीजेपी ने दिखाई। इसे जनपथ पर आंबेडकर प्रतिष्ठान और 26 अलीपुर रोड, दिल्ली पर बाबा साहब डॉ. आंबेडकर संग्रहालय से समझा जा सकता है। कांग्रेस ने इनके लिए योजना बहुत पहले बनानी शुरू कर दी थीं, लेकिन अमल में काफी देरी हुई। वैसे, 90 के दशक में वीपी सिंह के नेतृत्व में बनी केंद्र सरकार ने आंबेडकर जन्म शताब्दी समारोह मनाया। इसी संदर्भ में यह बताना जरूरी है कि महाराष्ट्र सरकार ने आंबेडकर की पांडुलिपियों और भाषणों को 'बाबा साहब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वाङमय' के नाम से प्रकाशित कराना भी शुरू किया। फिर शरद पवार जब महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री थे, तो उन्होंने औरंगाबाद में बाबा साहब डॉ. आंबेडकर विश्वविद्यालय की घोषणा की। कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं ने आंबेडकर को ज्यादा तरजीह नहीं दी, जबकि केरल, पश्चिम बंगाल के साथ अन्य प्रदेशों में भी उनकी कई बार सरकारें बनीं। कम्युनिस्ट नेताओं ने ऐसा इसलिए किया क्योंकि वे जाति से अधिक वर्ग को अहमियत देते थे। यह बात और है कि इन राज्यों में दलितों के वोट से वे सरकार बनाते रहे। जहां तक बीएसपी की बात है, सत्ता में आने के लिए कांशीराम और मायावती ने न केवल आंबेडकर को पूरी तरह से स्थापित किया बल्कि दलित वोटरों को जागरूक करने में भी कोई कोर–कसर नहीं छोड़ी। इससे यूपी में बीएसपी को कई बार सत्ता मिली। लेकिन आम दलितों को उनकी सरकार में क्या मिला, यह शोध का विषय है।

सूडोकु नवताल-5319

मध्यम

4			9		6	1		8
6	8							
	1	7	3	8		4		
3	4		6		7			9
5		1	8			2		7
2			5		1		8	4
		3		7	5	8	6	
							9	5
7		6	2		8			1

- प्रत्येक पंक्ति में 1 से 9 तक के अंक भरे जाने आवश्यक हैं.
- प्रत्येक आड़ी और खड़ी पंक्ति में एवं 3×3 के वर्ग में किसी भी अंक की पुनरावृत्ति न हो इसका विशेष ध्यान रखें.
- पहले से मौजूद अंकों को आप हटा नहीं सकते.
- पहेली का केवल एक ही हल है.

सूडोकु नवताल -5318 का हल

2	9	8	3	5	6	1	7	4
4	5	3	2	1	7	9	8	6
7	1	6	4	8	9	2	5	3
8	2	5	6	9	1	3	4	7
3	6	4	7	2	5	8	1	9
1	7	9	8	3	4	5	6	2
5	4	1	9	7	2	6	3	8
6	3	2	1	4	8	7	9	5
9	8	7	5	6	3	4	2	1

अपना ब्लॉग

दलितों के भीतर नई उम्मीदें जगती हैं

मोहन। अब आम आदमी पार्टी और केजरीवाल पर आते हैं। मानसिक रूप से सवर्ण नेता जब बाबा साहब का नाम लेते हैं तो दलितों के भीतर नई उम्मीदें जगती हैं। उन्हें लगता है कि अब उनके लिए समृद्धि के रास्ते खुलेंगे, उन्हें न्याय मिलेगा। दूसरे सवर्ण नेता सोचते हैं कि वे सबके लिए तो खुशहाली के दरवाजे खोल नहीं सकते, इसलिए वैसा कुछ किया जाए, जिससे दलित प्रभावित हों। केजरीवाल से दलित प्रभावित हुए भी। 'झाड़ू' चुनाव चिह्न रखना उनकी दूरदर्शिता थी। आप सरकार में सफाईकर्मियों को कितना कुछ मिला, यह तो वे ही जानें, लेकिन इतना जरूर है कि आप ने दलित वोटरों को आकर्षित किया। दिल्ली में वह फिर से सत्ता में आई। यहां तक कि दलितों ने बीएसपी को भी नकार दिया। जहां तक आंबेडकर की तस्वीरें सरकारी दफ्तरों में लगवाने की घोषणा का सवाल है तो यह घोषणा यूपी के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने भी की है।